मानसिक रोग : अनंत समस्याओं का मूल

मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य मनोवैज्ञानिक दक्षता या मानसिक संतुलन है, जिसमें संवदेनात्मक, भावनात्मक और चरित्रगत सामंजस्य होता है। यद्यपि इसका संबंध मन से है और शारीरिक स्वास्थ्य का संबंध शरीर से, तथापि शरीर के अस्वस्थ होने पर मन-मानस खराब होता ही है, ठीक वैसे ही जैसे मन-मिजाज के बिगड़ने की दशा में शरीर अप्रभावित हुए बिना नहीं रहता। शरीर एवं मन अन्योन्याश्रित हैं, फिर भी दैहिक बीमारी में कष्ट मुख्यतः देह को, जबकि मानसिक रोग में मन अंतर्व्यथित होता है। मानसिक रोग से ग्रस्त होने पर घुट-घुटकर जीना या मरना पड़ता है। भले ही रोगी एकदम न मरता हो और शारीरिक रूप से अधिक शिथिल न पड़ता हो तो भी भय, संताप, बेचैनी, उन्माद, अवसाद के कारण अपने ही अपनी हत्या पर उतारू रहता है। यह आत्महंता रुख कभी धीमे जहर की तरह शनैः-शनैः तो कभी अकस्मात् विस्फोट की तरह जानलेवा सिद्ध लेता है। केवल मानसिक स्थिति बिगड़ जाने पर अथवा पैनिक में आकर दूसरों की भी हत्या कर-करवा दी जाती है, क्योंकि विक्षप्त लोगों में आत्मविवेक नष्ट-भ्रष्ट हो चुका होता है और फिर 'मन के हारे हार और मन के जीते जीत' का भाव भी तो कार्यशील रहता है। मन-मानस में पनपने वाले ये रोग शरीर के बाह्य पटल पर जल्दी नहीं दिखते; यों तो शरीर के भीतरी हिस्से के रोग भी बाहर नहीं दिखते, पर वे अपने लक्षण व गहन जाँच से प्रायः पकड़ में आ जाते हैं, जबकि मानसिक रोग को आश्रय देने वाला मन-मानस जब खुद ही नहीं दिखता तो अपने में पलने वाले रोगों का आकार सहित साक्षात् दर्शन कैसे करा सकता है; हालाँकि कुछ मानसिक रोगों में हारमोंस के अवरुद्ध-असंतुलित होने का पता जाँच के दरम्यान चल जाता है। हृदय के भावों और मन के विकारों का आभास भी कायिक अनुभावों के रूपायित होने के उपरांत होता है, किंतु सदैव उनका बाह्य प्राकट्य होना जरूरी नहीं।

मनःस्थिति, मनोविकार, स्वभाव आदि का बिगड़ जाना और दिमाग का अंशतः या पूर्णतः काम न करना मानसिक व्याधि है, जिसमें अनेक स्तरों पर मन-मस्तिष्क क्षरित होता है। मानसिक तनाव-अवसाद या डिप्रेशन की स्थिति में अकारण दुश्चिंता, उद्वेग, अनिंद्रा, आक्रामकता बढ़ जाती है। जाहिर है कि चिंता चिता से ज्यादा तीक्ष्ण दाहक है, क्योंकि चिता मरे को जल्दी जलाती है, जबकि चिंता जीवित को तिल-तिल कर जलाती है। याददाश्त की कमजोरी अल्जाइमर रोग है। इस बीमारी में 'ताला बंद किया कि नहीं', 'तौलिया कहाँ रखा' जैसी साधारण चीजों से लेकर गूढ़ विचारणाओं तक को तुरत-फुरत भूलने की आदत स्थायी हो जाती है। मस्तिष्क की नस के दबने यानी पार्किसन में थरथराहट होने लगती है। फोबिया में आभासी डरावने माहौल वाला भय व आशंका सदैव घेरे रहती है। डीएचडी अर्थात् अटेंशन डेफिसिट हाइपर एक्टिविटी डिसआर्डर की समस्या आम तौर पर ध्यान केंद्रित न कर पाने से शुरू होती है। ध्यान छिन्न-भिन्न होने की समस्या से कमोबेश सब लोग कभी-न-कभी जूझते हैं। लगातार उदास-निराश रहना, घबराहट के साथ अलग-थलग महसूस करना और असामान्य बर्ताव करना भी मानसिक बीमारी है। इसी प्रकार मन का अस्थिर होना, मूड में अचानक उतार-चढ़ाव यानी 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' की स्थिति में रहना, बुरी आत्माओं तथा मृतकों को बार-बार देखने का छद्म अनुभव या कपोल स्वप्न में आने की अनुभूति मानसिक कमजोरी है। भ्रांति, मंदता, वहम, चिड़चिड़ापन, किंकर्तव्यविमूढ़ता, अनमनस्कता, प्रलाप, प्रमाद, आत्मग्लानि, हीनता-दीनता, विक्षप्ति, सनक और अकेले में गुमसुम रहकर आत्मघाती-विध्वंसकारी प्रवृत्ति के अनुरूप सोचना मानसिक हालत बिगड़ने की दशाएँ हैं। अवचेतन के इस रोग में बुरी लत जैसे नशा व मादक द्रव्य सेवन, मनोविकृतियाँ, अपराधबोध, एकाग्रता की कमी, जीवन से मरण बेहतर लगना, भूख न लगना, असहाय महसूस करना, दिल के तेज धड़कने और उत्तेजना में अचानक आपराधिक व्यवहार दृष्टिगत होता है। इनसे संपूर्ण सोच और व्यवहार में परिवर्तन आता है। वैदिक परंपरा में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, छिद्रान्वेषण, क्रूरता, मान, मद, शोक, चिंता, उद्वेग, भय, निंदा आदि मानसिक विकृतियाँ बताई गई हैं।

अपनी क्षमताओं से अपरिचित रहना भी मानसिक रूप से अस्वस्थ होने की पहचान है। मानसिक संतुलन पूरी तरह गड़बड़ाने की अतिशयता पागलपन है, जिसमें स्वयं के कार्यकलापों पर नियंत्रण नहीं रहता। आदमी अनाप-शनाप बकता, सुनता है और ऊटपटांग करता है, जिससे अंततः शरीर भी क्षतिग्रस्त होता है। वैसे भी जिसकी मानसिकता विकृत हो चुकी हो, उसके शारीरिक 'स्वास्थ्य' ठीक रहने का अधिक फायदा नहीं, न अपने लिए और न औरों के लिए। दिमाग का समुचित ढंग से काम करना ही आदमीयत का प्रमाण है। सिर पर चोट लगने, दुर्घटना के शिकार होने, अपौष्टिक भोजन व नशीले पदार्थों के सेवन से मानसिक स्वास्थ्य खराब होता है। कहीं आनुवंशिकता के कारण तो कुछएक बार संक्रमण के कारण भी यह बिगड़ता है। गहरे सदमे या अवसाद की स्थिति में हृदय रोग एवं रक्तवाहिकीय रोग उत्पन्न होते हैं; कैंसर, मधुमेह आदि भी बाद में घेर सकते हैं। आधुनिक समाज की दुश्वारियाँ इसके लिए सर्वाधिक जिम्मेवार हैं; संबंधों का विघटन, रिश्तों की खटास, निष्क्रियता या अत्यधिक भागमभाग, बेरोजगारी से लेकर देश-दुनिया की अनगिनत स्पर्द्धाएँ कारक हैं। विश्व की कुल आबादी का दसवाँ हिस्सा लगभग 75 करोड़ लोग मानसिक रोग से संत्रस्त हैं। दिनोदिन यह ज्यादा तीव्र गति से फैल रहा है, पर मानसिक क्षोभ मनुष्य के अस्तित्व और उसमें मन की अवस्थिति के साथ से परेशान करते रहा है, पर विडंबना यह कि

पता नहीं लगने देता कि वही परेशान कर रहा है। भूत-प्रेत से लेकर जादू-टोना तक का वहम परंपरागत रोग ही है। इसके रोगी एक खास तरह की गलत धारणाओं या कुप्रभावों में डूबते चले जाते हैं। उसमें गोते लगाते उन्माद-प्रमाद की अनुभूति होती है। ऐसे रोगों का उपचार करने वाले भी सामान्यतः रोगी टाइप ही होते हैं। नीम हकीम खतरे जान की तरह झाड़-फूँक करने वाले अधिकतर मंत्र की गूढ़ता-गंभीरता से अनभिज्ञ और अवधार्य करने में अक्षम हैं। यों तो मनुष्यमात्र का मानस अन्य प्राणियों से काफी समृद्ध है, जो अंतर्तम में मनुष्यता को प्रतिस्थापित करता है, इसलिए मानसिक रोग अमूमन मनुष्यों को ही होते हैं। लेकिन ऐसा नहीं कि पशुओं को बिलकुल नहीं होते, आखिर कुत्ते, हाथी भी पागल होते हैं और एकाएक मारते या काटते हैं।

भावनात्मक विकृतियाँ, खंडित मानसिकता और सांवेगिक पंगुता मानसिक स्वास्थ्य के क्षरित होने की परिणतियाँ हैं। व्यक्तिगत से लेकर वैश्विक स्तर तक जितनी समस्याएँ हैं, उनके मूल में व्यक्ति-व्यक्ति के मन की पंगुता की वजह से बने विश्वजनीन मानस का अभद्र-वीभत्स रूप कारण है। इसी वजह से एक या कुछएक व्यक्ति ही पूरी दुनिया को कभी महामारी में, कभी युद्ध में, कभी महासंकट में ढकेल देते हैं। खंडित मानसिकता का ही कुपरिणाम है कि चाहे समाजसेवा का प्रकल्प हो या राजनीति का, शिक्षा का क्षेत्र हो या रोजगार का, हर जगह नस्लवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद की संकीर्णता का विष व्याप्त है और विडंबना यह कि जो सबसे बड़े संकीर्णतावादी हैं, वे ही इनके उन्मूलन का बीड़ा उठाए घूम रहे हैं और दूसरों पर नफरत फैलाने की तोहमत जड़ते हैं। चतुर्दिक अंतर्व्याप्त जड़ता, लालफीताशाही, दकियानूसीपन के कारण शासनिक-सामाजिक अर्द्ध या पूर्ण विकलांगता उजागर होती है। प्रगति के पथ पर चलने के क्रम में अधुनातन दुष्प्रवृत्तियों की बाढ़ पंगुता की प्रतिकृतियाँ हैं। समस्त कष्टों, आधि-व्याधियों का मूलोत्पादक भी मानसिक विकृति है। शरीर-मन को स्वस्थ रखने के लिए योग, ध्यान, व्यायाम, सात्विक क्रियाशीलता, मनोवैज्ञानिक स्पर्श, फिजियोथेरेपी, नशा व मादक द्रव्य के निषेध का अभ्यास, रोग प्रतिरोधक क्षमता आदि को विकसित करते रहना उपयोगी है। इसी के निमित्त हर साल 10 अक्टूबर को सामूहिक स्वास्थ्य में भी मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष फोकस रखने के लिए 'विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस' मनाने की परिपाटी शुरू की गई है। मानसिक स्वास्थ्य स्वस्थ भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब है, जो विचारों, भावनाओं, व्यवहारों से परिलक्षित होते रहता है, इसलिए अपनी मानसिकता का स्वयं पल-पल आकलन करते रहना आवश्यक है; दूसरे भी पग-पग पर आपकी मानसिकता को जाँचते रहते हैं। यही नहीं, दूसरों की मानसिकता के हिसाब से विकसित-विकृत और अनुकूलित-प्रतिकूलित होने के प्रति भी सदैव सजग रहना जरूरी है।

विमुक्ति-अमुक्ति की कशमकश

सन् 1963 ई. में अमेरिकी लेखिका बेट्टी फ्राइडन की पुस्तक 'द फेमनिन मिस्टिक' के प्रकाशन के साथ ही पूरे पश्चिमी जगत में तहलका मच गया। इस पुस्तक में फ्राइडन ने अब तक के स्त्रियों के छुपे रहे असंतोष को शब्दबद्ध किया, जिसके कारण नारी समाज में इस पुस्तक का काफी वर्चस्व बना रहा। इस पुस्तक के द्वारा स्त्री समाज में जागृति आई, 'विमेन लिब' नाम से पहचाने जाने वाली प्रवृत्ति सामने आई। बाद में अमेरिकी व पश्चिमी समाज की पृष्ठभूमि और आंदोलनकारियों के अति उत्साह के कारण इसका मूल उद्देश्य गौण हो गया और तरह-तरह के अतिवादी विचार-व्यवहार सामने आने लगे। इसके अतिवादी विचारों की ओर जाने से पूर्व इस आंदोलन के मूल उद्देश्य पर ध्यान देना आवश्यक है जो अमृता प्रीतम के अनुसार इस प्रकार है - (क) औरत के अपने अस्तित्व के संबंध में चेतना जगाना (ख) लड़कियों का अधिकार लड़कों के बराबर होना (ग) बच्चों के लिए सँभाल-गृहों की माँग (घ) गर्भपात से संबंद्ध कानून : शरीर औरतों का है, उन्हें ही इस पर अधिकार हो, सरकार का अधिकार न हो (ङ) औरत के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव की आवश्यकता। स्त्रियों द्वारा शुरू किए गए आंदोलन के कारण अनेक नारीवादी संगठनों का उदय व प्रचार-प्रसार होने लगा। इस आंदोलन की अग्रणी संस्था 'नेशनल आर्गनाइजेशन ऑफ विमेन' (नाऊ) थी, जिसकी स्थापना बेट्टी फ्राइडन ने सन् 1966 ई. में की थी और वही इसकी संस्थापक अध्यक्ष भी थीं। इस संस्था को सबसे बड़ा नारीवादी संगठन माना जाता है। हालाँकि बाद के नारीवादी आंदोलनों में आई उग्रता के कारण फ्राइडन ने अपने को इस संस्था से अलग कर लिया और अगस्त सन् 1978 ई. में एक अमेरिकी पत्रिका में लेख लिखकर पूरे महिला आंदोलन पर पुनर्विचार की माँग उठायी। सन् 1981 ई. में प्रकाशित 'द सेकेंड स्टेज' में आंदोलन के उग्रवाद से इनका विलगाव प्रकट होता है। इन्हें उदार नारीवादी माना जाता है।

26 अगस्त, सन् 1970 ई. का दिन नारी मुक्ति आंदोलन में काफी चर्चित व महत्त्वपूर्ण दिन है। चूँकि इसी दिन अमेरिकी महिलाओं को मताधिकार मिलने की पचासवीं वर्षगाँठ पड़ती थी, अतः ''न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया, वाशिंगटन, बोस्टन, पिट्सवर्ग, लास एंजिल्स की सड़कों पर स्त्रियों के जुलूसों, बड़ी-बड़ी तख्तियाँ हाथों में लिए प्रदर्शनों, भीड़ और भगदड़ का नजारा देखने लायक था। विवाहित-अविवाहित, बच्चों वाली, बिना-बच्चों वाली, तरह-तरह की पोशाकों, केश सज्जा शैलियों से सजी 16 वर्ष से 80 वर्ष तक की उम्र की महिलाएँ नारे लगा रही थीं - हमें आजाद करो, हमारे साथ द्वितीय श्रेणी के नागरिकों का व्यवहार बंद करो। पुरुषों के बराबर नौकरियाँ और समान काम के लिए समान वेतन दो। हम अपने शरीर पर अपना अधिकार चाहती हैं। माँ बनने या न बनने, गर्भ रखने या गर्भपात कराने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। सड़कों से ऐसे

नाम हटा दो, जिनमें पुरुषों के साहस के चर्चे हों। इतिहास से ऐसे नाम मिटा दो, जिनमें केवल पुरुषों का ही बोलबाला हो। लैंगिक भेदभाव बंद करो। स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है आदि। इसके साथ ही महिलाओं ने प्रसाधन सामग्री से रद्दी रखने वाली टोकरियाँ भर दीं। भीतरी वस्त्रों की होलियाँ जलाईं। यह इस बात का प्रतीक था कि पुरुषों ने स्त्रियों पर कामुकता थोपी है और अब वे पुरुषों के लिए सजने-सँवरने से इनकार करती हैं।'' इस प्रकार पूरे घटना-क्रम से आंदोलन का अतिवाद झलकता है तथा ब्रा जलाने की घटना इस पूरे आंदोलन की विकृत मानसिकता को ही द्योतित करती है; हालाँकि इसे भिन्न-भिन्न तरह से उचित ठहराने का प्रयास होता रहा है तथा इसके सांकेतिक अर्थ को खोजने का आग्रह भी किया जाता है। यह बताया जाता है कि ब्रा जलाने का निहितार्थ यही है कि स्त्रियाँ 'सेक्स अब्जेक्ट' नहीं हैं, वे पुरुषों के मन बहलाने का साधन नहीं हैं। अपने विचारों-व्यवहारों के कारण चर्चित रहीं बंगलादेश की लेखिका तसलीमा नसरीन ने भी अंतर्वस्त्र जलाने को सचेत मानसिकता की उपज बताया है, स्त्री स्वतंत्रता का प्रतीक घोषित किया है। 30 अगस्त, 1999 ई. को दिल्ली से निकलने वाले दैनिक समाचार पत्र 'जनसत्ता' ने एक खबर छापी, जिसमें पहले से ठीक विपरीत अब ब्रा दिखाकर अमेरिकी महिलाओं द्वारा आजादी की अभिव्यक्ति पर रोचक टिप्पणी की गई है। खबर में कहा गया कि कभी अमेरिकी महिलाओं ने अपना ब्रा जलाकर आजादी का प्रदर्शन किया था। लेकिन उन महिलाओं की दूसरी पीढ़ी ने अब अपनी आजादी जताने का दूसरा तरीका निकाला है। आज की अमेरिकी युवतियाँ अपने ब्रा को दिखाकर आजादी का प्रदर्शन कर रही हैं। कुछ पर्यवेक्षकों ने इसे नई तरह की फैशन लहर कहा है। इससे कुछ अलग तरह का प्रदर्शन पिछले महीने तब दिखाई पड़ा जब अमेरिकी महिलाओं की फुटबॉल टीम ने विश्व कप जीता। चीन के खिलाफ फाइनल मैच पेनाल्टी गोल करने के बाद अमेरिकी डिफेन्डर ब्रैंडी ने चर्चित पुरुष खिलाड़ियों का उपहास उड़ाते हुए यह प्रदर्शन किया। खचाखच भरे स्टेडियम और टेलीविजन पर लाखों लोग इस मैच को देख रहे थे। उसी दौरान ब्रैंडी ने अपनी खिलाड़ियों वाली शर्ट फाड़ते हुए अपने काले ब्रा के पूरे सौंदर्य को प्रदर्शित कर दिया। अमेरिका के अखबारों और पत्रिकाओं ने इस प्रदर्शन का आवरण चित्र बनाया। इस घटना के साथ ही मीडिया में अधोवस्त्र के प्रदर्शन पर व्यापक बहस शुरू हो गई। नए रूप में प्रदर्शित करने पर चर्चा-परिचर्चा खूब हुई।

आरंभ में आंदोलन की प्रतिक्रिया एकदम अतिवादी छोर तक चली गई और स्त्रियों ने पुरुषों के साथ जीने, पति-कुटुम्ब, बच्चे, विवाह आदि से मुक्त होने का लक्ष्य प्रस्तुत किया। इसी उद्देश्य से 'सोसाइटी फार कटिंग ऑफ मेन' यानी पुरुषों का कद छोटा करने वाले संगठन की स्थापना सन् 1968 ई. में की गई, जिसकी संस्थापक और सिद्धांतकार वेलरी सोलोनस थीं। ''आंदोलन की उग्रता में महिलाओं से सिर्फ लड़कियाँ पैदा करने का आह्वान किया गया। आंदोलन के जोश में स्त्रियों ने केट मिलेट को नारी मुक्ति आंदोलन की माओत्से तुंग कहा, तो पुरुषों ने उन्हें 'पुरुषों को बधिया करने वाली' की संज्ञा दी। इसके अलावा पति द्वारा प्रपीड़ित बलात्कृताओं के लिए शरणस्थलियों का निर्माण, पुरुषों द्वारा कामकाजी स्त्रियों का यौन शोषण, विज्ञापनों व प्रचार माध्यमों द्वारा नारी-देह के प्रदर्शनों व सौंदर्य प्रतियोगिताओं का बहिष्कार आदि प्रमुख तथ्य इस आंदोलन के प्रेरक रहे हैं। भाषिक व शाब्दिक स्तर पर भी मैन, मैनकाइंड, चेयरमैन जैसे स्त्रियों की अनदेखी करने वाले शब्दों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त करने के लिए माँग की गई कि 'मिसेज' और 'मिस' के बदले 'मिज' कहा जाए ताकि उनके वैवाहिक स्तर से उनके व्यक्तित्व को न आँका जाए। चेयरमैन और हिस्ट्री जैसे शब्दों को 'चेयरपर्सन' और 'हरस्टोरी' में बदलने की माँग की गई। समान काम के लिए समान सम्मान मिलना चाहिए। केवल मर्दों वाले कामों और जगहों को भी स्त्रियों के लिए खोलने को कहा गया। स्त्री उग्रता को बढ़ाने में केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' और जर्मन ग्रीअर की 'फीमेल यूनिक' जैसी पुस्तकों का भी योगदान था। इसमें मुक्त यौन संबंधों तथा समलैंगिकता की वकालत की गई। इसके अतिरिक्त महिलाओं की इच्छा के विरुद्ध शरीर को न छूने देने का संकल्प प्रस्तुत किया गया, भले ही छूने वाला उसका पति ही क्यों न हो। ऐसी स्थिति में विद्वानों का इस आंदोलन के अतिरेक के प्रति सचेत होना स्वाभाविक ही था। इस सिलसिले में मार्गरेड मीड और नार्मन मेलर का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने इसके अतिवाद से सावधान किया। फिर उग्र नारीवादियों और आंदोलनविरोधी लोगों में टकराव बढ़ा, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगने लगे। ऐसे में नार्मन मेलर ने केट मिलेट और जर्मन ग्रीअर को न्यूयार्क के टाउन हॉल में शास्त्राार्थ करने की चुनौती दी। केट मिलेट ने आमंत्रण अस्वीकार कर दिया। जर्मन ग्रीअर ने जवाब देने के लिए जमकर तैयारी की। लोग उत्सुक थे मेलर और ग्रीअर का वाद-विवाद सुनने के लिए। बढ़ी दर के प्रवेश टिकटों पर भी उस शाम न्यूयार्क टाउन हॉल में दर्शकों की भारी भीड़ जुटी। लोगों को लग रहा था, आज कुछ होकर रहेगा। पर उन्हें निराशा ही हाथ लगी। मेलर चुप रहे। उनके इशारे पर एक व्यक्ति ने जर्मन ग्रीअर से कहा, 'आप पुरुषों से बराबरी का दावा करती हैं, अतः यहाँ मेलर पर हावी होकर उनके साथ बलात्कार करिए...। ग्रीअर सुनकर सन्न रह गईं। दूसरे दिन अखबारों में 'वैसा' होने की अटकलें और गप्पें छप गईं। ग्रीअर को बुरा लगा, पर क्या करतीं। इसके बाद भी वह जहाँ जातीं, उनसे बेहूदे सवाल किए जाते और कई बार ग्रीअर पसीने-पसीने हो जातीं।'' स्पष्ट है कि नारी मुक्ति आंदोलन जो एक बड़े लक्ष्य लेकर शुरू हुआ था, वह निहायत फूहड़पन, सतही प्रदर्शन, आत्मप्रवंचना व प्रतिक्रिया से विचलित हो गया। दिशाहीन होकर भिन्न-भिन्न वादों में बँटकर शाखाओं-उपशाखाओं में विभक्त हो गया। 'सदियों के बंधनों की यह भी एक अतिरेकी प्रतिक्रिया कही जा सकती है, जिसकी अनेक बातें अव्यावहारिक और अतिरंजना से भरपूर हैं तो कई बातें अच्छी भी हैं। पहली श्रेणी

का उदाहरण है सेक्स आक्रमणों में भी पुरुषों की बराबरी करने का दुस्साहस।' दूसरी श्रेणी का उदाहरण है नारी के मात्र भोग्या रूप का तगड़ा विरोध। इस प्रकार आंदोलन के कुछ अच्छे दीर्घकालिक परिणाम भी हुए और कुछ बुरे भी।

सन् 1998 ई. में सी.एन.एन.ए. द्वारा एक सर्वेक्षण कराया गया, जिसके अनुसार अमेरिका में तब 65 प्रतिशत महिलाएँ अपने को नारीवादी नहीं कह रही थीं। इससे पहले सन् 1989 ई. के सर्वेक्षण में यह आँकड़ा 58 प्रतिशत था, किंतु आजकल भी बहुत सारी महिलाएँ अपने को नारीवादी मानती हैं। ''अमेरिका में 'जड़ों की ओर लौटने' का आग्रह जारी है। 60-70 के दशक का उग्र और पुरुष विरोधी नारीवादी घर-वापसी के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि घर से बाहर निकल कर काम करने की जोखिम उठाने के बावजूद उन्हें मुक्ति नहीं मिली और उल्टे मातृत्व जैसे सहज सुखों से वंचित होना पड़ा। औरत की स्थिति की बेहतरी के लिए शुरू हुई यह लड़ाई उसे एक प्रति पुरुष बनाने की राह पर ले गई। घर से बाहर भी पुरुषों का वर्चस्ववादी ढाँचा इतना कठोर था कि उसने औरत को बराबर नहीं माना। इससे सबक लेते हुए यह जरूरी है कि स्त्री के विकास की लड़ाई को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा जाए।'' यही कारण है कि तमाम देशों में 'परिवार वर्ष' मनाया जाने लगा है। इस आंदोलन की सफलताओं, असफलताओं पर परस्पर विरोधी तर्क हैं तथा विद्वानों में इसे लेकर पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ के लिए यह नवीन चेतना का वाहक है तो कुछ औरों के लिए समाज-परिवार को तोड़ने की साजिश। हालाँकि हर आंदोलन की कार्य परिणति में अच्छाइयाँ-बुराइयाँ आती रहती हैं और यह विस्तार के साथ स्वाभाविक होता है। 70 के दशक में जिन बातों के लिए नारीवादियों को जोर देकर कहना पड़ता था कि हम नारीवादी हैं, अब वह बिना कहे सहजता से उपलब्ध है। *(यह ओम प्रकाश शर्मा की शोध पुस्तक 'समकालीन महिला लेखन' का संपादित अंश है, जिसमें आशारानी वोहरा की पुस्तक का संदर्भ भी सन्निहित है।)*

हर मर्ज की दवा

भारत में मोबाइल फोन का इतिहास पच्चीस साल पुराना है। जुलाई, 1995 ई. से इसकी सेवा शुरू की गई। इससे दो-तीन महीने पूर्व पेजर सेवा आरंभ हुई थी, जिसका स्मरण अब कम लोगों को होगा। इसमें एक छोटे यंत्र पर एकतरफा लिखित में संदेश आता था। जैसे-जैसे मोबाइल का प्रचलन बढ़ा, पेजर सेवा महत्त्वहीन होती गई। दूरसंचार तेजी से उभरने वाला उपक्रम बना। फलतः इसे डाक-तार विभाग से अलग करके स्वतंत्र विभाग के तौर पर स्थापित किया गया। सन् 2000 में भारत संचार निगम लिमिटेड (बी.एस.एन.एल.) की स्थापना हुई। उस समय मोबाइल पर आने वाले प्रत्येक कॉल पर पैसे कटते थे, इसलिए लोग कॉल आने पर काटकर लैंडलाइन से दुबारा फोन करते थे। सन् 2003 से आने वाली (इनकमिंग) कॉल निःशुल्क कर दी गई, किंतु रोमिंग का मामला अलग रखा गया। महानगरों में सेवा प्रदान करने के लिए महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड (एम.टी.एन.एल.) गठित हुआ, जिसका बी.एस.एन.एल. में विलय हो चुका है। कुछएक निजी कंपनियों का भी आपस में विलय हो चुका है और दसियों अच्छी-अच्छी कंपनियाँ काल के गाल में समा चुकी हैं, जिनका एक समय विशेष में ग्राहक से भरे बाजार में अच्छा दबदबा था। गौरतलब है कि दूरसंचार क्षेत्र आज भी सबसे कमाऊ क्षेत्र है, बेशक एक सीमा तक विस्तार के साथ इसमें ठहराव आना लाजिमी था। आरंभ में जैसी संभावना थी, उतनी सदैव हो भी नहीं सकती, अतः पहले जैसे मुनाफे की अपेक्षा दुर्लभ्य है। लेकिन इतने बड़े ढाँचे को व्यवस्थित रखने की कवायद छोटा दायित्व व कम मुनाफे का कारोबार नहीं है। निजी क्षेत्र की तीन कंपनियाँ वोडाफोन, जियो, एयरटेल अस्तित्व में हैं। एयरटेल और वोडाफोन पर एजीआर बकाया भुगतान को लेकर संकट बरकरार है और सरकारी राहत न मिलने पर वोडाफोन के बंद होने तक के कयास ही नहीं, कंपनी की ओर से अधिकृत बयान आने लगे थे। हालाँकि तात्कालिक रूप से यह संकट टल गया है, पर कहा जा रहा है कि भविष्य में जियो जिएगी और बाकी क्षीण हो जाएँगी! सार्वजनिक क्षेत्र के एकमात्र उपक्रम भारत संचार निगम लिमिटेड का हाल खस्ता है ही। इस प्रकार भारतीय दूरसंचार क्षेत्र में संकट के बादल छा गए हैं।

कभी कमाऊ व एकाधिकार की लोकप्रियता के कारण बी.एस.एन.एल. के सिम के लिए छह-छह महीने, साल-साल भर इंतजार करना पड़ता था। इसकी कालाबाजारी भी होती थी। लेकिन बदहाली में बदतर होती सेवाओं के कारण इसके ग्राहक कटते गए। सबसे ज्यादा आमदनी लैंडलाइन फोन से होती थी, वे भी घटते गए। 2007 ई. में सरकार की ओर से मिलने वाले लाइसेंस शुल्क और स्पेक्ट्रम चार्ज पर सब्सिडी-छूट खत्म कर दी गई। परिणामस्वरूप, इसका घाटा 40,000 करोड़ से अधिक हो गया है। कमाई का अधिकांश धन कर्मचारियों के वेतन पर खर्च होता है। इसलिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति (वी.आर.एस.) जबर्दस्ती देकर कर्मचारियों को सीमित करने की योजना पर अमल हो रहा है। इसके कॉल-डाटा प्लान अपेक्षाकृत सस्ते हैं, इसलिए अभी भी ग्राहक ज्यादा हैं, पर उनकी अधिसंख्या के पीछे निष्क्रिय नंबर वाले ग्राहकों की भरमार भी एक कारण है। आजकल सभी मोबाइल सेवा प्रदाता कंपनियों द्वारा नंबर चालू रखने के लिए न्यूनतम रकम लगभग पचास रुपए के मासिक रिचार्ज को अनिवार्य कर दिया गया है, अन्यथा नंबर बंद हो जाता है, जबकि बी.एस.एन.एल. के सिम की वैधता एक बार सौ-दो रुपए के रिचार्ज पर सालों तक बनी रहती है। लेकिन विडंबना यह है कि नेटवर्क ठीक काम न करने और महीनों-महीनों सिग्नल न मिलने के कारण यह बड़ा महँगा साबित होता है। इसके साथ दूसरी कंपनी का सिम रखना अपरिहार्य बना दिया गया है, यह मजबूरी और जरूरी बन जाता है। कुछ लोग मुरीद होने के कारण बी.एस.एन.एल की सिम-सेवा रखना चाहते हैं, पर वह बेकार व निराशाजनक लगती है; जबकि पहले जहाँ निजी कंपनियों का अता-पता नहीं

था, वहाँ बी.एस.एन.एल. न केवल बखूबी काम करता था, बल्कि दूसरी कंपनियों को अपने सिग्नल का स्रोत उपलब्ध कराकर उन्हें पैर जमाने का मौका देता था। सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर गाँवों-कस्बों तक में लोग बी.एस.एन.एल. के सिम से काम चला लेते थे। लेकिन अब इसका नंबर दिखावे से अधिक नहीं महसूस नहीं होता।

वोडाफोन-आइडिया के ग्राहकों की संख्या भी घटी है, प्रति ग्राहक औसत आय घट रही है। तिमाही घाटा लगातार बढ़ रहा है। कंपनी पर समायोजित सकल राजस्व का कुल बकाया 58,000 करोड़ से अधिक है। बकाए में 24,729 करोड़ स्पेक्ट्रम की राशि और 28,309 करोड़ रुपए लाइसेंस शुल्क है। इसमें से 7,854 करोड़ रुपए अदा की जा चुकी है। जाहिर है कि संपूर्ण आय के आधार पर एजीआर यानी एडजस्टेड ग्रॉस रेवेन्यू की गणना होती है। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद एजीआर बकाए 50,000 करोड़ रुपए के 10 प्रतिशत का भुगतान इसी वित्त वर्ष में किया जाना है। शेष अगले दस साल में दस किस्तों में करना है। कंपनी की ओर से कहा गया है कि इक्विटी और ऋण के रूप में रकम जुटाई जाएगी। दूसरी बड़ी कंपनी एयरटेल को 35,586 करोड़ रुपए का सांविधिक बकाया चुकाना है, हालाँकि इसने अपने हिसाब से 18,000 करोड़ रुपए चुकाए हैं। टाटा ने 2,197 करोड़ रुपए का भुगतान कर दिया है, जबकि सरकार ने 14,000 करोड़ रुपए का बकाया माना है। वीडियोकॉम पर 2,041 करोड़ और एयरसेल पर 11,950 करोड़ रुपए का बकाया है। एयरसेल के स्पेक्ट्रम का इस्तेमाल एयरटेल कर रही है। जियो ने 195 करोड़ रुपए जमा कराकर 31 जनवरी, 2020 तक का एजीआर बकाया चुकता कर दिया है, किंतु वह रिलायंस कम्युनिकेशन के स्पेक्ट्रम का इस्तेमाल कर रही है, जिस पर 25,000 करोड़ रुपए का बकाया है। अदालत ने सरकार से स्पष्ट पूछा है कि एयरसेल के स्पेक्ट्रम और आरकॉम के स्पेक्ट्रम का बकाया ब्याज सहित एयरटेल और जियो से लेना चाहिए या नहीं? इस प्रकार कुल 15 टेलीकॉम कंपनियों पर 1.69 लाख करोड़ का बकाया है। 2016 ई. में जियो के मुफ्त कॉल और सस्ते डाटा प्लान के लुभावने कार्यक्रमों से दूसरी कंपनियों को पिछड़ना पड़ा। जियो ने फेसबुक, गूगल, जेनरल अटलांटिक, इंटेल कैपिटल तथा क्वालकॉम वेंचर्स सहित दर्जन भर निवेशकों से डेढ़ लाख करोड़ रुपए जुटाए हैं। ऐसे में निशंक भाव से केवल जियो और शंक भाव से एयरटेल चल सकती हैं, वहीं परस्पर विलय के बाद भी वोडाफोन-आइडिया की आर्थिक स्थिति समृद्ध नहीं लगती।

बहरहाल, देश की दूरसंचार व्यवस्था को पूर्ण रूपेण प्राइवेट कंपनियों के हवाले कर देना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं। यह रक्षा क्षेत्र तो नहीं, पर उसका अभिन्न हिस्सा है। किसी देश की दूरसंचार सेवा उसके रक्षा तंत्र का मेरुदंड है। इसमें सेंध लगने या कमजोर होने का मतलब सुरक्षा ढाँचे का तहस-नहस होना और नागरिक सुविधाओं का चरमर्राना है। अतः ऐसा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सरकारी नियंत्रण में सुदृढ़ होना चाहिए, कम-से-कम एक सक्षम निकाय सार्वजनिक क्षेत्र का होना ही चाहिए। अन्य कंपनियों को दूरसंचार के क्षेत्र में अवसर देना भी जरूरी है, ताकि भारतीय दूरसंचार बाजार एक-दो व्यवसायियों के हाथों का खिलौना न बन पाए। यह आवश्यक है, अन्यथा लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था घूम-फिरकर पूंजीवादी व्यवस्था में तब्दील हो गई प्रतीत होगी। यों भी समाजवादी लोकतंत्र की अब चर्चा कहाँ है? धीरे-धीरे सरकारी उद्यमों को मटियामेट करते हुए निजी क्षेत्र के व्यवसायियों को सौंपकर उनके माध्यम से लाभान्वित होने का सिलसिला बदस्तूर चल रहा है। यह दुष्प्रवृत्ति व्यापक स्तर पर घर करती जा रही है कि जब भी कोई निकाय अक्षमता, अकर्मण्यता की वजह से घाटे में जाता है या उसकी सेवाएँ समुचित नहीं चलतीं, तो उसके निजीकरण का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। यदि सरकारी संसाधनों - पूंजी, कर्मचारी, नेटवर्क, शासन-प्रशासन से नैकट्य का इन्हें लाभ नहीं मिल पाता, तो यह सरकारी तंत्र की विफलता नहीं है क्या? आखिर हर मर्ज की दवा निजीकरण क्यों है? और यदि निजीकरण ही है तो सरकार तंत्र किसलिए है? दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि निजी हितों को फायदा पहुँचाने की मंशा तहत सरकारी उपक्रमों को बेचा जाता है। सत्ता रुझानों के मुताबिक कभी निजीकरण तो कभी राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति बदलती व बलवती होती है। एक समय था जब बैंकों के राष्ट्रीयकरण जैसा क्रांतिकारी कदम उठाया गया। प्राइवेट बैंकों की दशा-दिशा जब-तब इसके औचित्य का साक्ष्य प्रस्तुत करती रही है। इधर भारत सरकार रेलवे से लेकर एयर इंडिया तक और प्लेटफार्म से लेकर एयरपोर्ट तक के निजीकरण की दिशा में गतिमान है। यह सही है कि दबाव समूह के रूप में व्यवसायियों खासकर बड़े पूंजीपतियों की किसी भी सरकार को बनाने-बिगाड़ने में अहम भूमिका रहती है, इसलिए सरकार के लोगों का इनसे समन्वयात्मक संबंध स्वाभाविक है। फिर भी जनहित के नाम पर निजी हित को प्रश्रय देना कहाँ तक उचित है?